UG study material for students of History

1. Subject - History

2. UG Semester III

3. (History of India : Earliest time to 550 A.D.)

4. Topic - Causes of religious reform movements in the 6th century B.C.
(छठी शताब्दी ई० पू० की धार्मिक सुधार आन्दोलनों के कारण)

By Dr. Rajiv Nayan
Associate Professor,
Dept. of History,
Jagjiwan College, Ara

Scanned by CamScanner

प्रश्न- छठी शताब्दी ई० पू० के धर्म सुधार आन्दोलन के कारणों पर प्रकाश डालें।

उत्तर- छठी शताब्दी ई० पू० के धर्म सुधार आन्दोलन की पृष्ठभूमि उत्तर वैदिक काल के अंत तक तैयार हो चुकी थी। तत्कालीन सामाजिक विकास तथा वर्ण-व्यवस्था की जटिलता, तत्कालीन आर्थिक जीवन के परिवर्तनों, आडम्बर और पशु बलि प्रधान धार्मिक मान्यताओं, उपनिषदों तथा नवीन धार्मिक विचारों ने छठी शताब्दी ई० पू० के धर्म सुधार आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

सामाजिक कारण (Social Cause)

वैदिक संस्कृति में समाज का वर्गीकरण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में या यों कहें कि सुविधाभोगी (ब्राह्मण, क्षत्रिय) तथा सुविधाविहीन (वैश्य और शूद्र) दो वर्गों में बँट गया था। छठी शताब्दी ई० पू० के आते-आते वर्ण-व्यवस्था में काफी जटिलता आ गयी थी। अब वर्ण का निर्णय कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर होने लगा। 'वेदांग सूत्र' के आने के उपरांत भूम वर्ण व्यवस्था को जन्म आधारित बनाने की कोशिश आरंभ हुई। यदि यह व्यवस्था जन्म आधारित हो जाती तो केवल ब्राह्मण को इसमें फायदा था। उनकी स्थिति सर्वोच्च तो थी ही, अब सदा के लिए हो जाती। कर्म बदलता तब भी उनकी सामाजिक स्थिति नहीं बदलती। परिणामस्वरूप, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र ने इस प्रयास का विरोध शुरू किया। इन तीन वर्णों में वर्णव्यवस्था में परिवर्तन की कोशिश के खिलाफ आपसी एकजुटता ने धार्मिक-सामाजिक आन्दोलन को जन्म दिया।

: ब्राह्मण वर्ग द्वारा आपद धर्म विधान लागू करने का प्रयास

किया गया जिससे शेष तीन वर्णों में नाराजगी बढ़ी। आपद धर्म विधान का अर्थ है- "आपत्तिकाल में शास्त्र अनुमत नियम।" इसके अनुसार, यदि स्थिति सामान्य नहीं है, यदि आपत्तिकाल है तो वर्ण के विधान शिथिल किये जा सकते हैं। यदि अपने कर्म पर कायम रहते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपनी जीविका नहीं चला सकते तो ब्राह्मण अपने से नीचे वर्ण यानि क्षत्रिय कर्म अपना सकते हैं; क्षत्रिय अपने से नीचे एक वर्ण वैश्य का कर्म अपना सकता है, वैश्य अपने से एक स्थान नीचे शूद्र वर्ण का कर्म और अपने से एक स्थान ऊपर क्षत्रिय का कर्म अपना सकता है और इसी तरह शूद्र अपने से एक स्थान ऊपर वैश्य वर्ण का कर्म अपना सकता है।

आपद धर्म विधान ने ब्राह्मण को सर्वाधिक लाभ पहुंचाया; क्योंकि इससे उसकी सर्वोच्चता के अलावा विशेषाधिकार भी बरकरार रह गया। क्षत्रिय को इससे भारी नुकसान होता और उसकी पहचान ही मिट जाती। हालाँकि, वैश्य को ऊपर या नीचे दोनों तरफ जाने की सुविधा मिलती, लेकिन व्यवहारिक तौर पर क्षत्रिय वर्ण की ओर प्रवृत्त होने के लिए परिस्थितियाँ उसके अनुकूल नहीं थीं। साथ ही, अगर वह शूद्र वर्ण के दायरे में जाता तो द्विजत्व से बाहर होकर अपना विशेषाधिकार खो देता। उसकी अपनी पहचान कृषि कर्म, विभिन्न शिल्प कर्म एवं व्यापार-वाणिज्य से थी जिनपर उसका एकाधिकार समाप्त हो जाता। हालाँकि, आपद धर्म विधान का एक सकारात्मक पक्ष शूद्रों के लिये फायदेमंद था, क्योंकि वह वैश्य के कर्म को अपना सकता था जिससे उसकी स्थिति बेहतर होती।

Scanned by CamScanner

इस विधान ने क्षत्रिय तथा वैश्य को पूर्णतः अभाव की स्थिति में ला दिया। फलस्वरूप इन्हीं दोनों वर्णों ने सबसे अधिक मुखर होकर ब्राह्मणवाद के विरुद्ध तथा सामाजिक व्यवस्था में संभावित परिवर्तन की संभावना के विरुद्ध आवाज उठानी शुरू की जो एक सामाजिक आन्दोलन में 'परिणत हो गया।

सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन की जड़ में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की प्रतिद्वंद्विता थी। उत्तर वैदिक काल तक दोनों के मध्य सहयोगात्मक सम्बन्ध था। जहाँ ब्राह्मण वर्ग को सामाजिक एवं धार्मिक श्रेष्ठता प्राप्त थी वहीं क्षत्रिय को राजनीतिक श्रेष्ठता। लेकिन, वैदिकोत्तर काल (Post Vedic Era) में यह स्थिति परिवर्तित हो गयी। ब्राह्मणों के द्वारा अपने विशेषाधिकार को अक्षुण्ण बनाये रखने की क्षत्रियों के विशेषाधिकार को समाप्त करने के प्रयास से क्षत्रिय कुपित थे। इन्हें इस बात से भी आपत्ति थी कि ब्राह्मण वर्ग आर्थिक रूप से संपन्न होने पर भी राज्य को 'कर' (Tax) नहीं देता है। वैदिकोत्तर काल में दोनों के बीच की प्रतिद्वंद्विता बढ़ती गयी। परिणामस्वरूप, क्षत्रिय को ब्राह्मण के विरुद्ध, संस्कृत के विरुद्ध, वैदिक धर्म के विरुद्ध, यज्ञवाद के विरुद्ध, पुरोहितवाद के विरुद्ध आंदोलन का नेतृत्व करने का अवसर मिला।

इसके अतिरिक्त, अनुलोम-प्रतिलोम विवाह के फलस्वरूप से भी ब्राह्मणों के विरुद्ध एक नकारात्मक वातावरण बना। अनुलोम-प्रतिलोम विवाह से 12 वर्णसंकर जातियों का बनना तय था। वैदिकोत्तर ग्रंथ 'गौतम धर्म सूत्र' वह प्रथम साहित्य है जिसमें अनुलोम-प्रतिलोम विवाह की चर्चा की गयी थी तथा इसी में 11 वर्णसंकर जातियों की सूची उल्लेखित है। इस प्रकार वैदिकोत्तर काल में विवाह प्रतिबंधित होने लगा; जबकि वैदिक काल तक ऐसी

Scanned by CamScanner

सामाजिक गिरावट नहीं थी। वैदिक काल में विवाह स्वाभाविक रूप से होते थे। वैदिकोत्तर काल में अपने से अलग वर्ण में विवाह को समाज भिन्न नजर से देखने लगा। वर्णेतर विवाह से उत्पन्न वर्णसंकर जातियाँ अस्पृश्य की श्रेणी में आ गयीं और यहीं से भारत में अस्पृश्यता (Untouchability) की शुरुआत हुई। समाज को यह बिल्कुल पसंद नहीं आया कि विवाह प्रतिबंधित हो, वर्णसंकर को हेय दृष्टि से देखा जाय एवं इसे अछूत समझा जाय। अतः; शास्त्रों के इस नकारात्मक रूख के विरुद्ध आवाज उठनी शुरु हो गयी। अतः सामाजिक-धार्मिक आंदोलन के पीछे यह भी एक महत्वपूर्ण कारण था।

की चूँकि, वैश्यों की आर्थिक स्थिति काफी अच्छी थी; क्योंकि नवीन नगरों के उत्थान के परिणामस्वरूप कृषि, व्यापार तथा उद्योग-धंधों में संलग्न रहने से इनके पास पर्याप्त धन था। अतः, इनके लिये यह स्वाभाविक था कि अपनी स्थिति सुधारने के लिए, वे किसी अन्य धर्म का सहारा लें और इन्होंने ऐसा किया भी। आन्दोलन से उत्पन्न बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रति वे आकृष्ट हुआ और इनको तेजी से प्रचारित-प्रसारित करने में पूर्ण सहायता प्रदान की।

आर्थिक कारण (Economic Cause)

प्रो० रामशरण शर्मा के अनुसार, "नये धर्मों के उदय का वास्तविक कारण उत्तर-पूर्वी भारत में

Scanned by CamScanner

प्रकट हुई नयी कृषि अर्थव्यवस्था में निहित था।"

वैदिक काल की तुलना में वैदिकोत्तर काल में कृषि-योग्य भूमि का विस्तार हुआ। इस दौर में कृषि उपकरणों में वृहत सुधार हुआ। लौह तकनीक (Iron technology) की जानकारी तो उत्तर वैदिक काल में ही प्राप्त हो चुकी थी, लेकिन वैदिकोत्तर काल में इसकी उन्नतर तकनीक (निष्कर्षण, शोधन, उच्च तापमान पर गलन आदि) से लोग परिचित हुए। फलस्वरूप लोहे के बेहतर सामान बनाये जाने लगे। 'सुत्तनिपात' (6th century B.C) में लोहे के हल-फाल की चर्चा है। अन्य लौह-सामग्रियों में हंसिया, खुरपी, फावड़ा, कुदाल आदि निर्मित हुई।

कृषि-उपकरणों में भारी सुधार के साथ ही सिंचाई के साधनों का भी विस्तार हुआ। प्राकृतिक सिंचाई साधन के साथ-साथ कृत्रिम सिंचाई साधनों एवं उपकरणों का इस्तेमाल किया जाने लगा। वर्षा जल (प्राकृतिक साधन) के अतिरिक्त कुआँ (कूप, वलय कूप, वापि, मृतिका कूप), पोखरा (तड़ाग), नदी जल/झील से नहर (कुल्या) निकालकर सिंचाई करने की प्रणाली का विकास हुआ। वैदिक काल में "अस्मचक्र" का आगमन हुआ था जो रहट का प्राचीनतम रूप है। वैदिकोत्तर काल में "तुल तथा चक्रवट्ट" का आगमन हुआ जो अस्मचक्र से अधिक विकसित रूप है। हालाँकि यह वास्तविक रहट तो नहीं था, लेकिन सिंचाई का साधन अवश्य था।

परिणामस्वरूप, फसलों के प्रकार में बढ़ोतरी हुई। वैदिकोत्तर साहित्य में कंगु (बाजरा), चनक (चना), करपासम (कपास), लेहसुन, पिप्पलि (काली मिर्च), सिंगवे (अदरख), हल्दीद (हल्दी), अजवाइन आदि नवीन फसलों का उल्लेख मिलता है।

उपरोक्त उल्लेखित विवरण से स्पष्ट होता

Scanned by CamScanner

है कि वैदिकोत्तर काल में कृषि उत्पादन का स्तर आवश्यकता से अधिक (surplus Production) होने लगा। इस अतिशेष उत्पादन (surplus production) ने पूरी अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। लौह के प्रयोग वाले हल पर आधारित कृषि अर्थव्यवस्था के लिये पशुधन की अत्यधिक आवश्यकता थी। अतः, पशुपालन का विकास करना अत्यंत आवश्यक था, परन्तु यज्ञ एवं बलिप्रधान धर्म में पशुधन की काफी हानि हो रही थी। मगध के दक्षिण और पूर्वी सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले कबीलाई भी मांस के लिये पशु पालते थे। इस नयी आर्थिक व्यवस्था को जारी रखने हेतु पशुधन की सुरक्षा (अहिंसा) बहुत जरूरी थी। तत्कालीन प्रचलित रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं के अन्तर्गत ऐसा संभव नहीं था। इस पशुधन की सुरक्षा को मुख्य आधार बनाकर नई विचारधाराओं ने जनसमुदाय के एक बड़े भाग को वैदिक धर्म से विमुख कर दिया। पशुवध अब अनावश्यक रूढ़ि बन गया था। उपनिषदों में पशुवध की निन्दा की गयी तथा अहिंसा के उपदेश दिये गये। बौद्ध ग्रंथों में पशुओं को 'सुरक्षदा' और 'अन्नदा' कहा गया है। कृषि-प्रगति के अवरुद्ध हो जाने की आशंका ने क्षत्रिय के नेतृत्व में वैश्य तथा शूद्रों को आन्दोलन की ओर मोड़ दिया।

वैदिकोत्तर काल में एक और आर्थिक विचारधारा का उदय हुआ। निजी संपत्ति के विरुद्ध लोगों के मन में जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। पुरानी परंपरा के लोग संपत्ति का संचय

Scanned by CamScanner

नहीं करते थे। वे नये आवासों, नये परिधानों और सुख-सुविधा वाले नवीन परिवहन को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। वे युद्ध और हिंसा से घृणा करते थे। नये प्रकार की संपत्ति ने सामाजिक विषमताएँ उत्पन्न कीं। बन्धुत्व और समानता के कबीलाई आदर्श विलुप्त हो गये। परिणामस्वरूप सामान्य लोग आदिम व्यवस्था के जीवन को ही पुनः पसन्द करने लगे। वे उस आदर्श तपस्वी जीवन में लौटना चाहते थे जिसके लिए नवीन साधनों से अत्यधिक संपत्ति-अर्जन या नवीन जीवन-पद्धति की कोई आवश्यकता नहीं थी।

डॉ० रामशरण शर्मा लिखते हैं, "जैसी प्रतिक्रिया आधुनिक काल में औद्योगिक क्रांति-जनित परिवर्तन के विरुद्ध हुई वैसी ही प्रतिक्रिया ईसा पूर्व छठी सदी में उत्तर-पूर्वी भारत में भौतिक जीवन में हुए परिवर्तन के खिलाफ़ हुई थी। जिस प्रकार औद्योगिक क्रांति के उदय के बाद अनेक लोग मशीन-पूर्व युग में लौटने की इच्छा करने लगे थे, उसी प्रकार उस युग के लोग भी लौहपूर्व युग में लौटने की कामना करने लगे थे।"

नयी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत नये व्यवसायों का उदय, व्यापार-वाणिज्य की प्रगति, मुद्रा के उपयोग, नगरों का उदय, सूद तथा कर्ज की प्रथा जैसे तत्वों को ब्राह्मण ग्रंथ घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। धर्मसूत्र में सूदखोरी को घृणित माना गया है। फलतः, नवोदित वैश्य वर्ग ने इसका विरोध करना शुरू किया तथा इन्होंने नये संप्रदायों (जो इनके अनुकूल थे) के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

Scanned by CamScanner

धार्मिक कारण (Religious Cause)

छठी शताब्दी ई० पू० के धर्म सुधार आंदोलन का एक मुख्य कारण तत्कालीन धार्मिक व्यवस्था के विरुद्ध असंतोष की भावना थी। इस समय तक धार्मिक जीवन आडम्बरपूर्ण, खर्चीला, पशु प्रधान और बलि प्रधान बन चुका था। धार्मिक क्रियाकलापों में इतनी जटिलता व आडम्बरता आ गयी थी कि किसी भी व्यक्ति के लिए इन्हें पुरोहितों की सहायता के बिना संपन्न करना संभव नहीं था। ब्राह्मण ग्रंथों तथा उपनिषदों से ज्ञात होता है कि वैदिक मंत्र देववाक्य माने जाते थे। लोगों में यह विश्वास प्रचलित था कि किसी यज्ञ या अनुष्ठान में मंत्रोच्चारण में थोड़ी भी त्रुटि होने पर भयंकर परिणाम होंगे। ऐसे सांस्कृतिक परिवेश में पुरोहितों का महत्व बढ़ना स्वाभाविक था। किन्तु उनकी धनलोलुपता समाज के लिए कष्टदायक होने लगी और लोग ही यज्ञ तथा कर्मकांड भी नीरस, जटिल तथा बाहरी आडम्बर मात्र बनकर रह गये। राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ जैसे अनेक जटिल तथा दीर्घकालिक यज्ञों में बड़ी मात्रा में पशुवध तथा पुरोहितों को दी जाने वाली बहुमूल्य दक्षिणा के कारण धन तथा पशुओं की काफी हानि हो रही थी। पशुओं की बलि कृषि-व्यवस्था को भी प्रभावित कर रही थी। पुरोहित वर्ग नैतिकता व धार्मिक भक्ति की सीख तो दे रहा था, पर स्वयं इस मार्ग से

हटकर विलासपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था। उपनिषदों ने वेदों की व्याख्या कर कर्मकांड और पुरोहितवाद का विरोध किया था, किन्तु इससे जनसाधारण का धार्मिक असंतोष समाप्त नहीं हो सका; क्योंकि उपनिषद भी गंभीर तत्वज्ञान और दर्शन में उलझ गये। ऐसी स्थिति में कर्मकांडी धर्म, पुरोहितों के अनुचित आचरण, यज्ञवाद तथा वेदवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया होना स्वभाविक था। उत्तर पूर्व भारत में धार्मिक आंदोलन ने इन्हीं तत्वों को अपना प्रहार-केन्द्र बनाया।

उत्तर वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में ही उपनिषदों एवं आरण्यकों ने वेदों एवं ब्राह्मण ग्रंथों की कर्मकांड प्रधान धारा के विरुद्ध ज्ञान चिन्तन प्रधान धाराओं से प्रहार करना आरंभ कर दिया था। वैसे भी इस क्षेत्र में (उ० पू० भारत) यज्ञ मूलक वैदिक संस्कृति समाज में पूर्णरूपेण स्वीकृत नहीं हो सकी। कर्म प्रधान वैदिक संस्कृति का प्रवृत्ति मार्गी धर्म, उपनिषद के ज्ञान मार्ग तथा श्रवण परम्परा के निवृत्ति-मार्गी सन्यास धर्म के विपरीत था। उपनिषदों ने अध्यात्म को कर्मकांड से प्रमुख माना। वस्तुतः, उपनिषदों ने ही वैदिक धर्म के विरुद्ध एक वातावरण तैयार कर छठी शताब्दी ई० पू० के धर्म सुधार आन्दोलन को बल दिया।

वैदिक यज्ञवाद तथा कर्म प्रधान प्रवृत्ति मार्ग का श्रमण संस्कृति के निवृत्ति मार्ग से टकराव निश्चित था। वैदिक धर्म का विरोध करने वाले सभी आचार्य तथा उपदेशक सन्यासमय जीवन के समर्थक थे।

इन नयी विचारधाराओं से प्रभावित होकर कई सम्प्रदायों का उदय हुआ जो वैदिक कर्मकाण्डों, दान-दक्षिणा इत्यादि का घोर विरोध करते थे। जैसे-

Scanned by CamScanner

पूरण कश्यप जो घोर अक्रियावादी था। वह चोरी, डकैती, हत्या, झूठ को न पाप समझता था; न दान, जप, सत्य आदि को पुण्य। मक्खलि गोशाल ने आजीवक सम्प्रदाय की स्थापना की थी। अजित केशकम्बलिन नामक आचार्य यदृच्छावादी (भौतिकवादी) था। इन सभी अतिवादी तथा सामाजिक नैतिकता विहीन चिन्तन में कार्य-कारण सम्बन्धी प्रकृति के नियम पर अटूट विश्वास की धारणा कार्य कर रही थी।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि वैदिक धर्म की जीर्ण परम्पराओं तथा विभिन्न परिव्राजकों के अनौपचारिकता मूलक उपदेशों के बीच समाज को एक समाधान की आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता ने धर्म सुधार आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की। जैन और बौद्ध धर्मों ने इन आवश्यकताओं को पूरा तो किया ही; साथ ही साथ नई उत्पादन तकनीक पर विकसित (परिवर्तित) हो रहे समाज को वैचारिक तथा धार्मिक समर्थन भी प्रदान किया।

By Dr. Rajiv Nayan
Associate Professor,
Dept. of History,
Jagjiwan College, Ara
(V.K.S.U., Ara)

Scanned by CamScanner